उदाहरणार्थ अयं घटः (यह घड़ा है) इस प्रकार अज्ञात घड़ा विषयक घट के आकार से आकारित चित्तवृत्ति का उदय होने पर उसमें स्थित अज्ञान विनाश के पश्चात् अपने में स्थित चिदाभास के द्वारा जड़ भी प्रकाशित होता है।

कारिका में भी कहा गया है कि बुद्धि तथा उसमें वर्तमान चिदाभास ये दोनों घड़े में व्याप्त रहते हैं। उनमें से धी (बुद्धि) के द्वारा अज्ञान दूर होता है एवं चिदाभास द्वारा घड़ा अभिव्यक्त होता है। जैसा कि कहा है–

बुद्धितत्स्थचिदाभासौ द्वावपि व्याप्नुतो घटम्।
तत्राज्ञानं धिया नश्येदाभासेन घटः स्फुरेत्।।

जिस प्रकार दीपक का प्रकाश मण्डल अन्धकार में स्थित घड़ा वस्त्रादि को विषय बनाकर घट विषयक, पट विषयक अन्धकार को दूर करके अपने प्रकाश से उनको अभिव्यक्त करता है। उसी प्रकार घटादि को विषय बनाकर चित्तवृत्ति घटादिविषयक अज्ञान को नष्ट करके पुनः चिदाभास द्वारा घटादिकों को प्रकाशित करती है। यथा –

यथा दीपप्रभामण्डलमन्धकारगतं घटपटादिकं विषयीकृत्य तद्गतान्धकारनिरसनपुरस्सरं स्वप्रभया तदपि भासयतीति।

इस प्रकार अहं ब्रह्मास्मि महावाक्य चित्तवृत्तिव्याप्ति के द्वारा उस परब्रह्म के साथ जीव के अद्वयभाव को प्रकाशित करता है।

10.3.3 श्रवण,मनन, निदिध्यासन और समाधि की उपयोगिता

जीव को जब तक अपने यथार्थस्वरूप का ज्ञान नहीं हो जाता, जब तक वह अपने पारमार्थिक चैतन्यस्वरूप को अनुभव नहीं कर लेता, तब तक उसके लिए श्रवण, मनन, निदिध्यासन,
समाधि तथा अनुष्ठान का करना आवश्यक है, अतः उनका स्वरूप ज्ञान भी आवश्यक है। इसी के सम्बन्ध में कहा गया है–

एवंभूतस्वरूपचैतन्यसाक्षात्कारपर्यन्तं
श्रवणमननिदिध्यासनसमाध्यनुष्ठानस्यापेक्षितत्वात्तेऽपि प्रदश्यन्ते।।

आत्म साक्षात्कार के लिए वेदान्त में श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा समाधि ये चार साधन अंगीकार किये गये हैं इस सम्बन्ध में सदानन्द योगीन्द्र बृहदारण्यक को उद्धृत करते हैं–

तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्यं बाल्येन तिष्ठासेद् बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्याथमुनिः। यहाँ पाण्डित्य से श्रवण, बाल्येन से मनन तथा मुनि से निदिध्यासन का विधान किया गया है।
समाधि का उल्लेख श्वेताश्वतरोपनिषद् में किया गया है–तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः। इस मन्त्र में समाधि का वर्णन किया गया है। अर्थात् उस परमात्मा के अभिध्यान से उसमें मनोयोग करने से और तत्त्व की भावना करने से विश्वरूप माया का विकास होता है।

10.3.3.1 श्रवण (षड्लिंग से तात्पर्यनिर्णय)

उपक्रम–उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति नामक छह लिंगों द्वारा सम्पूर्ण वेदान्त सूत्रों का अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्यनिर्धारण करना श्रवण कहलाता है। यथा– श्रवणं नाम षड्विधलिंगैरशेषवेदान्तानामद्वितीये वस्तुनि तात्पर्यावधारणम्। लिंगानि तूपक्रमोपसंहाराभ्यासापूर्वताफलार्थवादोपपत्त्याख्यानि। अर्थात् उक्त श्रुति, युक्ति और अनुभव द्वारा समस्त उपाधि के निरास होने पर प्रत्यगात्मा अभिन्न, परमानन्द, चिद्रूप के साक्षात्कार होने तक श्रवण, मनन, निदिध्यासन और समाधि का अनुष्ठान अपेक्षित होने से वे प्रदर्शित किये जा रहे हैं। छः प्रकार के लिंगों द्वारा समस्त वेदान्तों का अद्वितीय वस्तु मे तात्पर्य का

Scanned with CamScanner

निश्चय करना श्रवण है। उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति ये छः लिंग हैं।

समस्त वेदवाक्यों का अद्वैत ब्रह्म में ही तात्पर्य है। इसका निश्चय विचारपूर्वक करना चाहिये, अन्धविश्वास से नहीं, यही तात्पर्यावधारण है।

श्रवण को समझने के लिए इन षड्लिंगों का स्वरूप समझ लेना जरुरी है। लिंग का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– लीनमर्थं गमयतीति लिंगम्।

जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य रूप जो अर्थ है, उसका बोध कराने के कारण उपक्रमादि लिंग कहलाते हैं।

प्रकरण के प्रतिपाद्यार्थ तथा उसके आदि और अन्त का उपपादन करना उपक्रम एवं उपसंहार है। अर्थात् जिस विषय का प्रतिपादन करना है उसके प्रारम्भ का ढंग या स्वरूप उपक्रम है तथा वर्णित विषयों को समेटना या उनके समापन का प्रकार उपसंहार है। इस विषय में सदानन्द कहते हैं– तत्र प्रकरणप्रतिपाद्यस्यार्थस्य तदाद्यन्तयोरुपपादनमुपक्रमोपसंहारौ। यथा छान्दोग्ये षष्ठाध्याये प्रकरणप्रतिपाद्यस्याद्वितीयवस्तुनः 'एकमेवाद्वितीयम्' इत्यादौ 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' इत्यन्ते च प्रतिपादनम्। अर्थात् प्रकरण के प्रतिपाद्यार्थ तथा उसके आदि और अन्त का उपपादन करना उपक्रम और उपसंहार है। जैसे छान्दोग्योपनिषद् के छठे अध्याय में प्रकरण प्रतिपाद्य 'अद्वितीय वस्तु एक ही अद्वैत तत्त्व' इस भाँति आदि में, 'वह सब आत्मा का ही है' इस प्रकार अन्त में प्रतिपाद्य विषय का उपक्रम एवं उपसंहार किया जाता है।

प्रकरण में प्रतिपाद्य वस्तु का बीच बीच में बारबार प्रतिपादन करना अभ्यास है जैसे वहीं छान्दोग्योपनिषद् में अद्वितीय वस्तु का बीच में तत्त्वमसि ;वह तुम होद्ध इस वाक्य का नौ बार प्रतिपादन किया गया है। अतः प्रतिपाद्य विषय का पुनः पुनः उल्लेख ही अभ्यास है– प्रकरणप्रतिपाद्यस्य वस्तुनस्तन्मध्ये पौनःपुन्येन प्रतिपादनमभ्यासः। यथा तत्रैवाद्वितीयवस्तुनि मध्ये तत्त्वमसीति नवकृत्वः प्रतिपादनम्।

जिस विषय का प्रतिपादन प्रकरण के अन्तर्गत किया जा रहा है वह अद्वितीय हो उसे किसी दूसरे प्रमाण की अपेक्षा न हो, यही अपूर्वता है। पूर्व उदाहरण के अन्तर्गत ही इसे समझा जा सकता है। वहाँ छान्दोग्योपनिषद् में ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए 'उसके विषय में अन्य कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया जा सकता।' यही उसकी अपूर्वता है। यथा– प्रकरणप्रतिपाद्यस्याद्वितीयवस्तुनः प्रमाणान्तराविषयीकरणमपूर्वता। यथा तत्रैवाद्वितीयवस्तुनो मानान्तराविषयी–करणम्।

वेदान्तियों एवं मीमांसकों के अनुसार अलौकिक होना ही शास्त्रोपदेश का वैशिष्ट्य है। तात्पर्य यह है कि शास्त्र की सफलता इसी में है कि वह अज्ञात को उपदिष्ट करें– अज्ञातज्ञापकं शास्त्रम्। उपनिषदों से अतिरिक्त किसी अन्य प्रमाण से उसका बोध नहीं हो सकता। जैसा कि कहा है तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि। इस वाक्य में पुरुष के औपनिषद विशेषण से उसकी उपनिषद् प्रमाणवेद्यता पर प्रकाश पडता है। अथवा ब्रह्म स्वयं प्रकाश होने के कारण अपने से अतिरिक्त किसी प्रमाण की अपेक्षा न होने से ब्रह्म की अपूर्वता प्रमाणित है–

ब्रह्मणः स्वव्यवहारि स्वातिरिक्त प्रमाणानपेक्षत्वाद् ब्रह्मणोऽपूर्वत्वमित्यर्थः। प्रकरण प्रतिपाद्य विषय का प्रयोजन ही फल होता है। यथा ब्रह्मविषयक प्रकरण में आत्मज्ञान अथवा उसके अनुष्ठान का जो प्रयोजन सुनाई दे अथवा दिखाई दे वही फल है। जैसे 'आचार्यवान् पुरुषो वेद' 'आचार्यवान पुरुष ही जानता है' उसके लिए तभो तक विलम्ब जानना चाहिए तब तक वह इस शरीर से मुक्त नहीं हो जाता। उसके पश्चात् तो वह सत्सम्पन्न अर्थात् ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार अद्वैत वस्तु के ज्ञान का प्रयोजन बताया गया है। यथा– फलं तु प्रकरणप्रतिपाद्यस्यात्मज्ञानस्य तदनुष्ठानस्य वा तत्र तत्र श्रूयमाणं प्रयोजनम्। यथा तत्र

Scanned with CamScanner

'आचार्यवान्पुरुषो वेद' तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य इत्यद्वितीयवस्तुज्ञानस्य तत्प्राप्तिः प्रयोजनं श्रूयते।

जिस उद्देश्य को लेकर प्रतिपादन किया जाता है, उस की प्राप्ति ही फल कहलाता है और जिस प्रतिपाद्य विषयों को समझाना चाहते हैं उसकी स्थान स्थान पर प्रशंसा करना अर्थवाद कहलाता है। जैसे कि ब्रह्म के स्वरूप प्रतिपादन के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतम् भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञानम्' अर्थात् तूने वह उपदेश ब्रह्मस्वरूप को पूछा, जिससे न सुना गया सुने हुये, अचिन्तित चिन्तन किये हुए, अज्ञात वस्तु बोधित वस्तु के सदृश हो जाती है। इस प्रकार ब्रह्म की प्रशंसा की गई है। यही अर्थवाद है। यथा– प्रकरणप्रतिपाद्यस्य तत्र तत्र प्रशंसनमर्थवादः। यथा तत्रैव 'उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातं' इत्यद्वितीयवस्तुप्रशंसनम्।

प्रकरण में प्रतिपाद्य को प्रमाणित करने के लिए जगह जगह वर्णित होने वाली युक्ति ही उपपत्ति कहलाती है। जैसे वहाँ पर सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद् वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृतिकेत्येव सत्यम्। अर्थात् हे सौम्य जिस प्रकार मृत्तिका के एक पिण्ड को जान लेने पर सम्पूर्ण मृण्मय वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। विकार तो वाणी से आरम्भ होने वाला नाम मात्र होता है सत्य तो केवल कारणभूत मृत्तिका ही होती है, इत्यादि वाक्यों से अद्वितीय वस्तु ;की ही सत्यताद्ध को उपपन्न करने के लिए विकार के केवल वाणी के आश्रित होने में युक्ति का उपस्थापन किया गया है। यथा– प्रकरणप्रतिपाद्यार्थसाधने तत्र तत्र श्रूयमाणा युक्तिरुपपत्तिः। तत्र यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् इत्यादावद्वितीयवस्तुसाधने विकारस्य वाचारम्भणमात्रत्वे युक्तिः श्रूयते।

इस प्रकार श्रवणादि साधनों का प्रयोजन है ब्रह्म और आत्मा के एकत्व का ज्ञान और ब्रह्मज्ञान का फल है ब्रह्म की प्राप्ति। 'ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही हो जाता है' और 'आत्मवेत्ता शोक को पार कर लेता है', इत्यादि श्रुतियाँ इसमें प्रमाण हैं। जैसा कि नृसिंह सरस्वती का कहना है –

श्रवणादिसाधनानां ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं प्रयोजनं ब्रह्मणो ज्ञानस्य तु तत्प्राप्तिः फलम्।। इस प्रकार श्रवण अर्थात् षड्विध लिंगों द्वारा ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना व उसका अभ्यास करना मुक्ति के इच्छुक जीव के लिए आवश्यक है।

10.3.3.2 मनन

वेदान्तदर्शन में केवल श्रुतियों के अनुरुप तर्क ही ग्रहण योग्य है। जो पुरुष ऋषियों द्वारा किए गए धर्मोपदेश का वेद तथा शास्त्र के अविरोधी तर्कों से अनुसन्धान करता है, वही धर्म के यथार्थरूप को जान पाता है, न कि दूसरा। यह निर्विवाद है कि वेदान्त में श्रुत्यनुकूल तर्क ही आदरणीय होता है। जिसे वेदान्त में मनन की संज्ञा दी गई है। मनन का स्वरूप स्पष्ट करते हुए सदानन्द कहते हैं– मननं तु श्रुतस्याद्वितीयवस्तुनो वेदान्तानुगुणयुक्तिभिरनवरतमनुचिन्तनम्। अर्थात् श्रुत अद्वितीय वस्तु का वेदान्त के अनुकूल तर्कों से निरन्तर विचार करना मनन है। मनन का अर्थ है पूर्वोक्त छः लिंगों द्वारा समस्त वेदान्त वाक्यों का अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्य है, इस निश्चय रूप श्रवण के बाद वेदान्त के अनुकूल तर्कों से उस अद्वितीय का सतत चिन्तन।

मनन की इस परिभाषा से स्पष्ट ह कि आत्मविद्या के मार्ग में मनुष्य के कपोल कल्पित उच्छृंखल तर्कों का कोई महत्त्व नहीं है। महत्त्व केवल उन तर्कों का है, जिनसे वेदान्त की मान्यता का विरोध न हो। यहाँ तो श्रुति से समर्थित तर्क ही ब्रह्मानुभूति के सहायक रूप में अंगीकार्य हैं। श्रुति के द्वारा तत्त्वार्थनिश्चय के अनन्तर असम्भावना आदि दोषों के निरास के लिए जिस तर्क का अवलम्बन अपेक्षित है, वही वेदान्त के अनुकूल होता है। जैसा कि पंचदशी में कहा है– युक्त्या सम्भावितत्वानुसन्धानं मननं तु तत्।

Scanned with CamScanner

10.3.3.3 निदिध्यासन

शरीर से लेकर बुद्धि पर्यन्त समस्त जड़ पदार्थ को विषय करने वाली विजातीय प्रतीतियों से पृथक् होकर अद्वितीय ब्रह्म की सजातीय प्रतीतियों को प्रवाहित करने को निदिध्यासन कहा जाता है। सदानन्द के अनुसार–

विजातीयदेहादिप्रत्ययरहिताद्वितीयवस्तुसजातीयप्रत्ययप्रवाहो निदिध्यासनम्। अर्थात् विजातीय शरीरादि की प्रतीति से रहित होकर अद्वितीय वस्तु की सजातीय प्रतीतियों को प्रवाहित करना निदिध्यासन है।

नि + उपसर्गपूर्वक ध्यै धातु से सन् प्रत्यय तथा भाव अर्थ में ल्युट् करने पर निदिध्यासन शब्द बनता है। आत्मा से भिन्न समस्त पदार्थ यहाँ तक कि मनुष्य की बुद्धि भी स्वप्रकाश न होने से जड़ है, अतः सभी अनात्म पदार्थ आत्मा से विजातीय हैं। इसलिये उनकी प्रतीति आत्म प्रतीति से विजातीय है, ऐसी सभी प्रतीतियों का परित्याग कर आत्मविषयक सजातीय प्रतीतियों को अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित करना निदिध्यासन है। इस को पंचदशी में इस प्रकार कहा है–

ताभ्यां निर्विचिकित्सेऽर्थे चेतसः स्थापितस्य यत्।
एकतानत्वमेतद्धि निदिध्यासनमुच्यते।।

अर्थात् श्रवण और मनन के द्वारा जब आत्मा का स्वरूप निश्चित हो जाता है, उसमें किसी प्रकार का संशय नहीं रह जाता, तब चित्त को उस आत्मस्वरूप में लगाकर उसकी एकतान एकाकार जो वृत्ति अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित की जाती है उस प्रवाहमान आत्मविषयक चित्तवृत्ति को ही निदिध्यासन कहते हैं।

10.3.3.4 समाधि (सविकल्पक, निर्विकल्पक, आठ अंग व चार विघ्न)

व्युत्थान संस्कार का अभिभव तथा निरोध संस्कार का प्रादुर्भाव होने पर जो चित्त का एकाग्रतारूप परिणाम होता है, उसे समाधि कहा जाता है– चित्तस्य ज्ञेयात्मना निश्चलावस्थानं समाधिः। वह दो प्रकार की है– सविकल्पक व निर्विकल्पक। समाधि का विवेचन करते हुए सदानन्द कहते हैं– समाधिर्द्विविधः– सविकल्पको निर्विकल्पकश्चेति। तत्र सविकल्पको नाम ज्ञातृज्ञानादिविकल्पलयानपेक्षयाद्वितीयवस्तुनि तदाकाराकारितायाश्चित्तवृत्तेरवस्थानम्। तदा मृन्मयगजादिभानेऽपि मृद्भानवद् द्वैतभानेऽप्यद्वैतं वस्तु भासते। तदुक्तम्–

दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम्।
अलेपकं सर्वगतं यदद्वयं तदेव चाहं सततं विमुक्तमोम् इति।।

निर्विकल्पकस्तु ज्ञातृज्ञानादिविकल्पलयापेक्षयाद्वितीयवस्तुनि तदाकाराकारितायाश्चित्त – वृत्तेरतितरामेकीभावेनावस्थानम्। तदा तु जलाकाराकारितलवणानवभासेन जलमात्रावभासवदद्वितीयवस्त्वा–काराकारितचित्तवत्त्यनवभासेनाद्वितीयवस्तुमात्रमवभासते। ततश्चास्य सुषुप्तेश्चाभदशंका न भवति। उभयत्र वृत्त्यभाने समानेऽपि तत्सदसद्भावमात्रेणानयोभदोपपत्तेः।। अर्थात् समाधि दो प्रकार की है– सविकल्पक और निविकल्पक। उनमें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के विभाग के अभाव की अपेक्षा न करके अद्वितीय वस्तु के आकार को धारण करने वाली चित्तवृत्ति का अद्वितीय वस्तु में स्थिरीकरण सविकल्पक समाधि है। उस समय मृत्तिका के बने हुये हाथी आदि खिलोने का भान होने पर भी मृत्तिका के भान की तरह द्वैत के भान होने पर भी अद्वैत वस्तु का भान होता रहता है। कहा भी गया है– जो चैतन्य स्वरूप है, आकाश के सदृश है, श्रेष्ठ है, सदा एक समान प्रकाशित है, जन्मरहित , एक, अक्षर, निर्लिप्त और अद्वितीय है, सर्वदा विमुक्त मैं वही ओंकार रूप हूँ। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के विभाग के अभाव की अपेक्षा से अद्वैताकार चित्तवृत्ति का अद्वितीय वस्तु में अत्यन्त एकीभाव से स्थित होना निर्विकल्पक समाधि है। एस समय जैसे जल में मिलकर जलीभूत नमक का भान न होकर जलमात्र का ही भान होता है,

Scanned with CamScanner

उसी प्रकार अद्वैताकार चित्तवृत्ति के अद्वैतरूप हो जाने से उसका भान न होकर अद्वैतमात्र का ही भान होता है। इसी कारण समाधि और सुषुप्ति में अभद की शंका नहीं होती, क्योंकि दोनों में चित्तवृत्ति का भान न होने की समानता होने पर भी एक (समाधि) में उसका (चित्तवृत्ति का) अस्तित्व और दूसरे (सुषुप्ति) में उसका (चित्तवृत्ति का) अभाव होने से दोनों का भद उपपन्न हो जाता है।

समाधि के अंग

निर्विकल्पक समाधि के आठ अंग हैं। योगदर्शन में इन्हें योग का अंग मना गया है। अतः स्पष्ट है कि योग की साधन प्रक्रिया अद्वैत को स्वीकार्य है। इन आठ अंगों का विवेचन करते हुए सदानन्द इनका स्वरूप स्पष्ट करते है– अस्यांगानि यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयः। तत्र अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। करचरणादिसंस्थानविशेषलक्षणानि पद्मस्वस्तिकादीन्यासनानि। रेचकपूरककुम्भकलक्षणाः प्राणनिग्रहोपायाः प्राणायामाः। इन्द्रियाणां स्वस्वविषयेभ्यः प्रत्याहरणं प्रत्याहारः। अद्वितीयवस्तुन्यन्तरिन्द्रियधारणं धारणा। तत्राद्वितीयवस्तुनि विच्छिद्य विच्छिद्यान्तरिन्द्रियवृत्तिप्रवाहो ध्यानम्। समाधिस्तूक्तः सविकल्पक एव। अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि उपर्युक्त निर्विकल्पक समाधि के अंग हैं। उनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम हैं। हाथ, पाद आदि की किसी विशेष स्थिति में स्थापन रूप पद्म स्वस्तिकआदि आसन हैं। प्राणवायु को निगृहीत करने के उपाय रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायम है। इन्द्रियों को अपने विषयों से पृथक् करना प्रत्याहार है। अद्वितीय वस्तु में अन्तरिन्द्रिय को प्रवृत्त करना धारणा है। अद्वितीय वस्तु में अन्तरिन्द्रिय की वृत्तियों को रुक रुक कर प्रवाहित होना ध्यान है। समाधि तो उक्त सविकल्पक ही है।

विविध ब्रह्माण्ड को ब्रह्म मानकर इन्द्रियों का दमन यम कहा जाता है। सर्वं ब्रह्मैव का ध्यान कर अहिंसादि यमों का पालन होने से इन्द्रियां साधक के वश में हो जाती है। बाह्य एवं आन्तर के भद से शौच दो प्रकार का होता है। मिट्टी एवं जल से बाह्यशुद्धि तथा विचारों की शुद्धि आन्तर शुद्धि है। हस्तपादादि अवयवों का विशेष स्थिति में स्थिरतापूर्वक रहना आसन है। भीतरी प्राणवायु को बाहर करना, बाहरी वायु को प्राणवायु के रूप में भीतर करना एवं प्राणवायु का भीतर ही अवरोध करना प्राणायाम है। ध्यान काल में अपने अपने विषयों से असम्बद्ध इन्द्रियों का अन्तःकरण के स्वरूप का अनुकरण करना प्रत्याहार है। जहाँ जहाँ मन जाता है वहाँ वहाँ ब्रह्म का ही दर्शन करना एवं उस ब्रह्म में ही मन को समाहित करना सर्वोत्तम धारणा है। समस्त मानवों की बुद्धि के साक्षीरूप में विद्यमान अद्वितीय बह्म में चित्त को निक्षिप्त करना धारणा है। तैलधारा के समान चित्तवृत्ति का अविच्छिन्न एकरस प्रवाह ध्यान है। समाधि का स्वरूप पहले ही स्पष्ट है यहाँ सविकल्पक समाधि निर्विकल्पक समाधि का अंग है ऐसा अर्थ जानना चाहिए।

समाधि के विघ्न

समाधि के दो भद किये जा चुके हैं सविकल्पक व निर्विकल्पक। इनमें सविकल्पक में अखण्ड वस्तु के भान के साथ विकल्प अन्यवस्तु का भी भान होता है, किन्तु निर्विकल्पक में किसी विकल्प का भान नहीं होता। अतएव निर्विकल्पक अंगी होता है और सविकल्पक यम आदि के समान उसका अंग होता है। यमनियमादि का अनुष्ठान करने पर भी कभी कभी ऐसी स्थिति बनती है जिनसे निर्विकल्पक की स्थिति अवरुद्ध होती हैं उन स्थितियों को निर्विकल्पक की सिद्धि में विघ्न माना जाता है और उन्हें लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद इन चार नामों से कहा जाता है। सदानन्द के अनुसार– एवमस्यांगिनो निर्विकल्पकस्य लयविक्षेपकषायरसास्वादलक्षणाश्चत्वारो विघ्नाः सम्भवन्ति। लयस्तावदखण्डवस्त्वनवलम्बनेन चित्तवृत्तेर्निद्रा। अखण्डवस्त्वनवलम्बनेन चित्तवृत्तेरन्यावलम्बनं विक्षेपः। लयविक्षेपाभावेऽपि चित्तवृत्ते रागादिवासनया स्तब्धीभावादखण्डवस्त्वनलम्बनं कषायः। अखण्डवस्त्वनवलम्बनेनापि चित्तवृत्तेः सविकल्पकानन्दास्वादनं रसास्वादः। समाध्यारम्भसमये सविकल्पकानन्दास्वादनं वा।।

Scanned with CamScanner